# तुलसीदास के 'अयोध्याकाण्ड' में ज्ञान और भक्ति

**डॉ उषा रानी मलिक**
शिक्षा विभाग
महाराजा सूरजमल संस्थान,
सी.–4, जनकपुरी, नई दिल्ली–58

**सारांशिका**

भक्ति महिमा पर जिस प्रकार सम्पूर्ण 'रामचरितमानस में भगवान भक्त और भक्ति का भावभीना अलंबन है, उसी का एक लघुतम किन्तु विशिष्ट और महत्वपूर्ण अंश अयोध्याकांड भी है। यह सर्व विदित है कि इस कांड का श्रीगणेश ही 'शिव–स्तुति' से हुआ है। यहाँ एक ओर यदि कवि तुलसी की समन्वयवादी दृष्टि का सूचक है तो दूसरी ओर उदारता भरी विचारणा का भी परिचायक है ाक्ति का मूल तत्व है महत्व की अनुभूति। इस अनुभूति के साथ ही दैन्य अर्थात अपने लघुत्व का अनुभव होने लगता है। उसे जिस प्रकार प्रभु का महत्व वर्णन करने में आनन्द होता है, उसी प्रकार अपना लघुत्व वर्णन करने में भी।.....अपने पापों की पूरी सूचना देने से जी का बोझ ही नहीं, सिर का बोझ भी कुछ हल्का हो जाता है।

**मुख्य शब्दः** अयोध्याकाण्ड, ज्ञान, भक्ति, करूणा, समन्वयवादिता

जब किसी एक व्यक्ति में भावना और दर्शन एक साथ देखने को मिलते हैं तो हमको एक महान कवि मिल जाता है। निश्चितः रुप से तुलसी ऐसे ही महान कवि थे। वह अति के अध्येता थे जिन्होंने संस्कृत और उसमें भी मुख्यतः दर्शन और नाना धर्मग्रंथों का गहन अध्ययन मनन एवं चिन्तन किया था। उन्होने, चिन्तन और विचार, अति की भावुकता भरी मानववादिता, सरल – सहज निश्छलता और कुछ विशिष्ट करके परमार्थ करने की सतत लगन आदि उनकी वैयक्तिक विशेषताएँ थीं। अतः दूसरी ओर उनकी निश्छलता भरी अतिशय भक्ति–भावना, समन्वयवादिता की प्रवृत्ति, युग–समाज और धर्मोत्थान का आदर्श, स्व युगीन भक्ति प्रधान वातावरण एवं मुख्यतः समकालीन हिन्दू धर्म, संस्कृति, समाज और जाति को उन्नत–जागृत करने का युगानुकूल कर्त्तव्य–निर्वाह आदि उनका काव्य जीवन इष्ट भी था। उनका जन्म, पालन– पोषण और जीवन का अधिकांश उस प्रदेश में हुए थे जहाँ का कण–कण भक्ति भरा था। इसलिए सबसे अधिक तो उनकी सामान्यताएँ, विश्वास, विचारधारा, नीति–मर्यादा प्रेम, शीलनिरुपण, आदर्श–प्रेम आदि की अभिव्यक्ति के लिए निश्चयतः राम–कथा ही अधिक अनुकूल सिद्ध हो सकती थी। यहाँ कहना न होगा कि तुलसी को राम–भक्त और राम–काव्य कार बनाने में इन्हीं प्रेरक तत्वों की मुख्य भूमिका रही थी जिससे तुलसी महान कवि बन गए।

'रामचरितमानस' का अयोध्याकांड द्वितीय सोपान या काण्ड है जिसमें विवाहोपरान्त, राम के राज्याभिषेक की तैयारियों की असफलता से लेकर भरत द्वारा श्रीराम से पादुका ग्रहण करने, उनको सिंहासन पर प्रतिष्ठित करने और स्वयं नंदीग्राम में रामवत् रह कर राम–सेवा करते रहने तक की कथा कही गई है। इस काण्ड में या तो कथा– तत्व प्रमुख रहा है अथवा भरत के चरित्र की प्रस्तुति है। अतएव ज्ञानादि के प्रत्यक्ष प्रस्तुतीकरण और भक्ति के सैद्धान्तिक विवेचन करने आदि की यहाँ पर न तो अधिक आवश्यकता ही रही है, न कवि को इसका अवकाश या अवसर ही रहा है। अतः फिर भी, अवसर मिलते ही उसने यथा शक्ति लाभ उठाया है। यहाँ संक्षेप में ही सही, इनकी भी झांकी अवश्य प्रस्तुत कर दी गई है।

इसका मुख्यतः ज्ञान विषयक विवेचन का, एक अवसर उसको मिला है–श्रृंगवेरपुर की एक रात्रि में जबकि राम–सीता शयन मग्न हैं तथा अनुज लक्ष्मण और रामसखा निषादराज गुह, पहरा देते हुए, वार्ता करते हैं। यहीं पर लक्ष्मण का यह कथन देखिए–

''काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता।।

जनमु मरनु जँह लगि जग जालू। संपति विपति करम अरु कालू।।

देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं। मोह मूल परमारथ नाहीं।।

जनिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब विसय बिलास बिरागा।।

होइ विवेक मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा।।1

यहाँ स्पष्ट किया गया है कि जीव को कोई सुख दुख नहीं देता है बल्कि अपने कर्मों के आधार पर उसका फल मिलता है। मनुष्य अपने कर्मों से ही अमीर और गरीब बन जाते हैं। इन पंक्तियों में देखिए–

सपने होइ भिखारी नृपु रंकु नाकपति होइ।

जागे लाभु न हानि कछु तिमि प्रपंच जिस जोइ।।

इसी प्रकार राम, मानवमात्र न होकर निर्गुण ब्रह्म के साकार (अवतार) रुप है–उसकी समस्त विशिष्टताओं के साथ तुलसीदास ने स्पष्ट कह दिया है–

'राम ब्रह्म परमारथ रुपा। अविगत अलख अनादि अनूपा।।

सकल विकार रहित मतभेदा। कहि नित नेति निरुपहि बेदा।।

भगत भूमि भूसुर सुरभि सुरहित लागि कृपाल।

करत चरित धरि मनुज तनु सुनत मिटहिं जग जाल।।

सखा समुखि अस परिहरि मोहूँ सिय रघुवीर चरत रत होहूँ।।2

जब तक मनुष्य भगवान के विमुख रहता है तब तक वह अंधेर नगरी में फंसा रहता है जिससे उसकी स्थिति बड़ी दयनीय बनी रहती है। ऐसी स्थिति में मानव के प्रति करुणा दिखलाई पड़ती है जिसके सम्बन्ध में निराला भी रहते हैं–''यह करुणा मानव के प्रति मोह को स्वीकार करता है।''3 महर्षि बाल्मीकि तो राम, सीता और लक्ष्मण तीनों के ही अवतारत्व को, स्वयं राम के सम्मुख प्रकट करते हैं। इतना ही नहीं बल्कि बिना परमात्मा की कृपा के कुछ हो ही नहीं

पाता है तभी तो कहा है–

'श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।

जो सुजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की।।

जो सहस–सीसु अहीसु महिघरु लषनु सचराचर धनी।

सुर काल घरि नरराज तनु चले दलन खल निसिचर अनी।।

राम सरुप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धि पर।

अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कहा।''4

वाल्मीकि की विचारधारा है, ये राम 'जग क्रीड़ा को देखने वाले, विधि हरिहर को नचाने वाले, चिदानन्दमय देह वाले, संत–सुर–काज हेतु नर तन धारण करने वाले तथा सर्ववयापी हैं।' इनका मर्म तो त्रिदेव नहीं जान पाये और कौन जानेगा ? जो (भक्त) जान जायेगा, वह तदांगी हो जायेगा। इसीलिए, गुरु वशिष्ठ उनको 'माया–पति' बताते हैं तो देवगुरु बृहस्पति देवराज इन्द्र को उनसे माया करने के प्रयास को वर्जित करते हैं। निश्चयतः यहाँ सम्पूर्ण अयोध्याकांड में कवि तुलसी ने जीव–जगत की कोई व्याख्या उपस्थित नहीं की है, यद्यपि इनकी सत्ता को भी, ब्रह्म की सत्ता के साथ–साथ स्वीकार किया है। वह मानते है कि बिना परमात्मा के कुछ नहीं है–

'उभय बीच सिय सोहति कैसें। ब्रह्म जीव बिच माया जैसें।

भक्ति महिमा पर जिस प्रकार सम्पूर्ण 'रामचरितमानस में भगवान भक्त और भक्ति का भावभीना अलंबन है, उसी का एक लघुतम किन्तु विशिष्ट और महत्वपूर्ण अंश अयोध्याकांड भी है। यह सर्व विदित है कि इस कांड का श्रीगणेश ही 'शिव–स्तुति' से हुआ है। यहाँ एक ओर यदि कवि तुलसी की समन्वयवादी दृष्टि का सूचक है तो दूसरी ओर उदारता भरी विचारणा का भी परिचायक है। यहाँ पर एकमात्र कैकेयी–मंथरा को छोड़कर, अन्य सभी चरित्र किसी न किसी रुप–मात्रा में राम–भक्त हैं। इनमें भी सर्वोपरि है–निषाद और भरत जो सेवक–सेव्यपरक दास्य भक्ति और भायप भक्ति के सच्चे उत्तम प्रतिनिधि के रुप में खड़े दिखाई पड़ते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (चिन्तामणिः भाग 1) का यह कथन सत्य है कि–''भक्ति में प्रेम के अतिरिक्त आलम्बन के महत्व और अपने दैन्य का अनुभव परम आवश्यक अंग है। तुलसी के हृदय से इन दोनों अनुभवों के ऐसे निर्मल–शब्द स्त्रोत निकले हैं। जिनमें अवगाहन करने से मन की मैल कटती हैं और अत्यंत पवित्र प्रफुल्लता आती है।.....भक्ति का मूल तत्व है महत्व की अनुभूति। इस अनुभूति के साथ ही दैन्य अर्थात अपने लघुत्व का अनुभव होने लगता है। उसे जिस प्रकार प्रभु का महत्व वर्णन करने में आनन्द होता है, उसी प्रकार अपना लघुत्व वर्णन करने में भी।.....अपने पापों की पूरी सूचना देने से जी का बोझ ही नहीं, सिर का बोझ भी कुछ हल्का हो जाता है।'5 कवि तुलसी के अयोध्याकांड में मुख्यतः निषादराज गुह और उससे भी कहीं अधिक भरत अपनी उसी उच्चकोटि की भाव भारी दैन्य भावना की स्थिति में दिखाई पड़ रहे हैं–मुख्यतः 'नाविक केवट प्रसंग' और चित्रकूट–यात्रा', चित्रकूटीय सभाएँ और नंदीग्राम निवासस्पदि प्रसंगों में ऐसा ही दिखाई पड़ रहा है। इसके कुछ उदाहरण देखिए जाते निषाद का भरत के विरुद्ध आशंकित होने मात्र पर सैन्य–तैयारियाँ करना, वास्तविकता को जानकर ससैन्य भरत का यथाशक्ति किन्तु अत्यन्त भावभरा स्वागत–सत्कार करना एवं आद्योपरान्त भरत, लक्ष्मण और स्वयं राम के सम्मुख दैन्यता भरी बातचीत कहते रहना अत्यन्त भावप्रद और रसोत्प्रेरक तो हैं

ही, दास्यभावना की सुन्दर अभिव्यक्तियाँ भी दिखाई पड़ रही हैं। यह कथन हमारे इसी मत की पुष्टि करते दिखलाई पड़ रहे हैं–

1. स्वामि काज करिहहु रन रारी। जस घाव लिहउँ भुवन दसचारी।

तजउँ प्रान रघुनाथ निहोरे। दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरे।।

साधु समाज न जाकर लेखा। राम भगत महुँ जासु न रेखा।

जायँ जिअत जग सो महि भारु। जननी जौबन विटप कुठारु।।

2. कपटी कायरु कुमति कुजाति। लोक बेद बाहेर सब भाँति।।

राम कीन्ह आपन जब हीं तें। भयउँ भवन भूषन तबहीं तें।।

3. हम जड़ जीव जीवगन धाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाति।।

पाप करत निसि बासर जाहीं। नहीं पर कटि नहिं पेट अधाहीं।।

सपनेहु धरम बुद्धि कस काऊ। येह रघुनन्दन दरस प्रभाऊ।।''6

वस्तुतः भरत का ऐसा भाव राम के प्रति दास्य भक्ति को स्पष्ट रुप से प्रकट कर रहा है। इसलिए भरत का ऐसा भाव रामानुज होने से उनकी भक्ति भावना को 'भायप भक्ति' की श्रेणी में रख सकते हैं। उसमें भी दैन्य भाव ही प्रमुख तम और आद्योपान्त है जो निश्चयतः चरम सीमा पर है। चित्रकूट की यात्रा में जाते समय की उनकी मनःस्थिति, निषादादि को देख मिलकर होने वाली उनकी प्रतिक्रियाएँ चित्रकूटीय सभा में उनका राम के सम्मुख किया गया आत्मनिवेदन एवं गुरु वशिष्ठ, निषादराज गुह, देवतागण प्रयागराज, महर्षि भारद्वाज एवं सबसे अधिक तो स्वयं श्रीराम के भरत चरित्र और भक्ति–भावना ही उनकी इस ग्लानिभरी स्वाभाविक दीनता, आत्म भर्त्सना आदि से उनकी दैन्यभाव भरी सच्ची भक्ति के ही ज्वलंत साक्षी हैं। वास्तव में देखा जाए तो भरत के इसी ग्लानि–दैन्य भरे, भक्त रुप को देखकर हमारा आकर्षण उनके प्रति क्रमशः बढ़ता जाता है। हम उनके प्रशंसक होते जाते हैं, उनसे और उनके भक्त रुप या भक्ति भावना से सम्मोहित हो जाते हैं। इतना ही नहीं अन्ततः श्रद्धाभिभूत तक हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में कवि तुलसी तक ने उनसे इतना अधिक एकात्म्य स्थापित किया है कि भरत की प्रेम (भक्ति) निष्ठा कवि की आत्मकथा सी बन जाती है। इसलिए रामचरित 'मानस के सभी भक्त मिलकर भी भरत की बराबरी नहीं कर पाते हैं क्योंकि ऐसी भक्ति की शील मूर्ति अकेले भरत हैं।'

नवधा भक्ति का आश्रय भी सर्वाधिक मात्रा में भारत ही हैं। इस अयोध्याकांड में वरन् सारी 'मानस' में, .....भरत ही एक ऐसे भक्त हैं जिनमें श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद–सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्व एवं आत्मनिवेदन इन नौवों प्रकार की भक्तियों का समावेश है।' इस प्रकार, अयोध्याकांड में वाल्मीकि ने जो चौदह स्थान श्रीराम को निवास हेतु बताये हैं, वे ही श्रेष्ठ भक्त के चौदह लक्ष्मण है। यह सबके सब भरत– हृदय में उपस्थित और भरे पड़े मिलते हैं। वह भी सर्वाधिक इसी एक कांड–अयोध्याकांड में ही दिखलाई पड़ रहे हैं।

1. पुलकि सरीर सभ्ज्ञा भए ठाढ़ें। नीरज नयन नेह जल बाढ़े।।

2. दरसन तृपति न आजु लगि प्रेम पियासे नैन।

3. गुरु गोसाईं साहिब सिय रामू। लागत मोहि नीक परिनामू।।

4. पुलक गात हियँ रघुबीरु। जीह नामु जप लोचन नीरु।।

5. परमारथ सारथ सुख सारे। भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे।।

साधन सिद्धि राम पग नेहूँ मोहि लखि परत भरत मत एहूँ।

6. जनम–जनम रति राम–पद येहु बरदान न आर।

7. मैं धिग–धिग अध उदधि अभागी। सब उतपातु भयउ नेहि लागी।।

8. सिर भर जाउँ उचित अस मोरा। सब तें सेवक धरमु कठोरा।।

9. सीता राम चरन रति मोरे। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरे।।

10. राम दास छल बिटप बिलोकें। उर अनुराग रहत नहिं रोकें।।

11. निज गुन सहित राम गुन गाथा। सुनत जाहिं सुमिरत रघुनाथा।।

तीरथ मुनि आश्रम सुरधामा। निरखि निमज्जहिं करहिं प्रनामा।।

मनहिं मन मागहिं वर एहु। सीय राम पद पदुम सनेहूँ।7

वस्तुतः भरत की भक्ति की यह पराकाष्ठा है कि वह कहीं भी भक्ति की उच्च कमतर नहीं आंके गए हैं। ऐसी भक्ति भावना के सम्बन्ध में डॉ रमेशदत्तमिश्र उचित ही लिखते हैं कि– ''ऐसा भाव मानव की दिव्यता का पोषक है।''8 ऐसी भावभक्ति राम भाव देवता, ऋषि और मुनियों का भी कल्याण कर देता है। मनुष्य की तो बात ही छोड़ दीजिए। ऐसी भक्ति के सम्बन्ध में डॉ. देवीशरण रस्तौगी लिखते हैं कि–''सुर नर मुनि सभी को राम परम कल्याणकारी सिद्ध होते हैं।''9 जब जीव भगवान की अराधना में तल्लीन रहता है तो एक न एक दिन वह परमात्मा में एकाकार हो जाएगा। ऐसी भक्ति ही अत्यन्त भावना मानव को भगवान से जोड़ देती है। अन्यथा चिन्ता की वृद्धियों में बहकर जीव फिर नश्वरता की ओर जाने लगता है। इस नश्वरता के सुरुचि में जीव भरकर नाना प्रकार के माया झंझाल में फंसकर दुःख भोगने के लिए मजबूर हो जाता है। वह दर – दर की ठोकर खाता रहता है। उसे भगवान तो क्या मनुष्य भी दुत्कारने लगता है। जब परमात्मा ने सबसे उच्च कोटि का शरीर मनुष्य को दिया है तो इन्हें वह परमात्मा की भक्ति करके संसार के आवगमन के चक्कर से छुट्टी भी मिल सकती है। इसलिए निरन्तर भगवान का भजन करते रहना चाहिए जैसा भरत जी राम का करते रहते हैं। भक्त के परमात्मा भजन की ओर यह भाव देखिए–''जब हमारी सारी शक्तियाँ अवगुणों से हटकर भगवान की ओर स्वभावत प्रवाहित होने लगे – नित्य निरन्तर जाने लगे तब समझना चाहिए कि हम भजन के पथ पर हैं और इस प्रकार जो भजन होता है वही सच्चा भजन है।'' 10 देखा जाए तो रामचरितमानस के अयोध्याकांड में ज्ञान और भक्ति की गंगा प्रवाहित हो रही है जो जीव को निरन्तर संसार से उभरने का संदेश दे रही है। इसलिए मानव जगत की नश्वरता को छोड़कर भगवान की भक्ति करने लग जाए तो निश्चित रुप से उसको दुःखों से छुटकारा मिल जाएगा। वास्तव में जीव जब इस संसार में माया के वशीभूत होकर नाना प्रकार की समस्याओं में उलझ जाता है तब कोई गुरु उसे ज्ञानरुपी दीपक के प्रकाश से उभारता है तभी वह इस मोहममता के जाल से छूटकर बन्धनमुक्त हो जाता है। ऐसी कृपा प्रभु की भक्ति से ही जीव को प्राप्त होती है।

**सन्दर्भ सूची :–**

1. तुलसीदास रामचरितमानस (अयोध्याकांड)
2. तुलसीदास रामचरितमानस (अयोध्याकांड)
3. डॉ रमेशदत्त मिश्र – निराला काव्य में मानवीय चेतना पृ0 63
4. तुलसीदास रामचरितमानस (अयोध्याकांड)
5. रामचन्द्र शुक्ल – चिन्तामणि भाग – एक।
6. तुलसीदास रामचरितमानस (अयोध्याकांड)
7. तुलसीदास रामचरितमानस (अयोध्याकांड)
8. डॉ रमेशदत्त मिश्र – निराला काव्य में मानवीय चेतना पृ0 101
9. डॉ देवीशरण रस्तौगी – कवियों पर आलोचनात्मक अध्ययन पृ0 119
10. कल्याण – गीता – गोरखपुर वर्ष 99 संख्या 2 पृ0 19